

## टैगोर तथा गांधी का शिक्षा दर्शन

### एक तुलनात्मक अध्ययन

□ परोमेश आचार्य

अनुवादक - देवयानी

“गांधी तथा टैगोर के जीवन मूल्यों में जो सैद्धांतिक मतभेद थे उनकी झलक उनके शिक्षा संबंधी विचारों में भी देखी जा सकती है। अगर कलाकार टैगोर के लिए कल्पनाशीलता में जीवन का सार निहित था, तो गांधी ने मानव श्रम के महत्व को समझते हुए काम को ही अधिक महत्व दिया।” यह टिप्पणी इस लेख के प्रकाशन के साथ की गयी थी। यह लेख ‘इकानॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली’ (खंड -32, सं. 12, मार्च, 1977) में छपा है जिसे यहां पुनः छापने का प्रसंग देशज शिक्षा-दर्शन पर विमर्श को सीमित दायरे से बाहर लाने की कोशिश है। प्रस्तुत अनुवाद में तथ्यों व संदर्भों को नहीं दिया गया है, इनकी जानकारी के लिए ‘ई.पी.डब्ल्यू.’ का उक्त अंक देखें।

मैं यह पहले ही स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि यहां हमारी कोशिश भारत के दो महान शिक्षाविदों, मोहनदास करमचन्द गांधी व रवीन्द्र नाथ टैगोर, के शिक्षा संबंधी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करना मात्र है। भारतीय अर्थव्यवस्था में हो रहे बदलाव के मौजूदा दौर में इन दोनों के अध्ययन से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष हासिल किये जा सकते हैं। मसलन, हम यह जान सकेंगे कि हमारी शिक्षा पद्धति इन महान शिक्षाविदों की अवधारणाओं से कितने भिन्न आधारों पर खड़ी है। विचार तथा सत्य के बीच की यह दूरी हमें निराश कर सकती है। लेकिन, यहीं हम यह भी देखेंगे कि किसी भी देश में शिक्षा पद्धति का निर्धारण उसके महान शिक्षाशास्त्रियों के विचारों से नहीं बल्कि इतर कारणों, बाजार की मांग इत्यादि, से होता है। यहां हमारा इरादा शिक्षा प्रणाली के निर्धारण में शिक्षाशास्त्रियों के महत्व को नकारना नहीं है, बल्कि किसी भी शिक्षा व्यवस्था पर उसके विचारकों के प्रभाव को तो साफतौर पर देखा ही जा सकता है, क्योंकि, अंततः कोई भी विचार पूर्णतः नष्ट नहीं होता। लेकिन यह भी सच है कि शिक्षा के विकास की जो अवधारणा रूसो, ड्यूवी, गांधी या टैगोर जैसे शिक्षाशास्त्रियों ने रखीं, उनको किसी भी देश की शिक्षाप्रणाली में मुख्यधारा के रूप में अपनाया नहीं गया।

प्रचलित धारणाओं के चलते गांधी तथा टैगोर के शिक्षा विषयक विचारों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन मुझे काफी मुश्किल लगता है। दरअसल टैगोर मुझे गांधी से ज्यादा दुरूह लगते हैं, जिसका एक कारण उनके लिखने की आकर्षक शैली भी हो सकती है। उनका लेखन विश्लेषणात्मक से कहीं ज्यादा

लाक्षणिक शैली में है। परिणामतः वह हमारे दिमाग से कहीं ज्यादा दिल पर असर करता है। आखिर तो टैगोर एक कवि थे और उनके शिक्षा संबंधी विचार भी एक कवि मस्तिष्क की ही उपज होंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि उनकी अलग-अलग व्याख्याएं की जा सकती हों।

दूसरी तरफ गांधी, राजनीति में नैतिक मूल्यों के प्रबल पक्षधर, जिनका समग्र विचार ही जन आकांक्षाओं तथा उनकी जरूरतों से संचालित था, जो आम आदमी की ही बात करते और जिनके शिक्षा संबंधी विमर्श में कहीं कोई संश्लिष्टता थी ही नहीं। उनके लिए शिक्षा उनकी नीति आधारित राजनैतिक कार्य योजना का एक अभिन्न अंग थी। यहां दावे के साथ कहा जा सकता है कि शिक्षा तथा राजनीति में जैसा संतुलन गांधी ने बनाया वैसा उनसे पहले किसी भी भारतीय शिक्षाशास्त्री अथवा राजनेता के लिए संभव नहीं हुआ था। यहां हमें टैगोर तथा गांधी के बीच बड़ा अंतर दिखाई दे सकता है, लेकिन दोनों के शिक्षा संबंधी विचारों तथा उनके दार्शनिक आधारों के बीच समानताओं को रेखांकित करना बहुत मुश्किल नहीं होगा। इसके बावजूद टैगोर तथा गांधी के बीच मौजूद अन्तर को नजरअन्दाज कर देने का अर्थ बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य को ही छोड़ देना होगा।

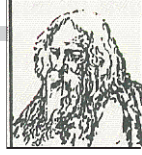
यह सच है कि लम्बे समय से इस विषय पर काम करने वालों ने दोनों के बीच मौजूद मतभेदों की बजाय समानताओं पर ही ज्यादा ध्यान दिया। वर्ष 1947 में त्रैमासिक ‘विश्व भारती’ ने ‘स्वतंत्र भारत में शिक्षा की चुनौती’ पर विशेषांक निकाला, जिसमें इस बारे

में सुझाव प्रस्तुत करने की बजाय प्रश्न खड़े करने पर अधिक जोर रखा गया। इस अंक में देश के बड़े-बड़े विद्वानों के टैगोर तथा गांधी के शिक्षा संबंधी विचारों तथा प्रयोगों पर लेख संकलित थे। मेरी राय में उस समय शुरू हुआ यह विमर्श बेहद महत्वपूर्ण था और हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्धारण के लिए इसे जारी रखा जाना चाहिए था। लेकिन, नेहरू के आधुनिकीकरण के कार्यक्रम ने हमारी शिक्षा को इस विचार से विमुख कर दिया। इसी का नतीजा है कि आज टैगोर और गांधी का वैचारिक महत्व भुला दिया गया है और उनकी स्मृति को गलियों और इमारतों के नामों के सहारे बचाया जा रहा है। प्रत्येक शहर में गांधी मार्ग तथा रवीन्द्र भवन मिल जायेंगे, लेकिन हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति आज भी उपनिवेशवादी व्यवस्था की तर्ज पर कायम है। और लगातार ज्यादा से ज्यादा किताबी होती जा रही है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक भारतीय भद्रलोक में अंग्रेजी शिक्षा का वैसा आकर्षण नहीं रह गया था, जैसा इस शताब्दी की शुरुआत में था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभामंडल से कुछ हद तक उनका मोहभंग होने लगा था, लेकिन पूर्णतः वे इसका परित्याग नहीं कर पाए। नई शताब्दी शुरू होने के साथ ही भारतीय शिक्षा ने एक नया मोड़ लिया। भारतीय दिलो दिमाग से मैकाले का प्रभाव मिटने लगा और उसकी जगह राष्ट्र गौरव की भावना ने ले ली।

मातृभाषा, राष्ट्रीय संस्कृति तथा शिक्षा में क्षेत्रिय गौरव को पहचान मिली। इसी समय में टैगोर तथा गांधी ने औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाते हुए शिक्षा का नया विमर्श प्रस्तुत करना शुरू किया। राष्ट्रीय नीति निर्माण की जरूरत ने दोनों को ही अपने शिक्षा संबंधी विचारों को विकसित करने के लिए प्रेरित किया। यह महज एक संयोग ही था कि शिक्षा तथा समाज संबंधी अपने आरंभिक लेखों में टैगोर ने 1905 में लेख 'स्वदेशी स्वराज' लिखा वहीं 1908 में गांधी 'हिंद स्वराज' लिख रहे थे। दोनों ने ही मातृभाषा की उपेक्षा तथा अंग्रेजी शिक्षा की रुग्ण मानसिकता की चर्चा की। बाद के समय में हालांकि

कवि टैगोर ने राष्ट्रीयता की सीमा का अतिक्रमण करने के लिए राष्ट्रवाद को छोड़ दिया था। दूसरी तरफ गांधी, जो जीवन पर्यन्त नैतिक मूल्यों को बचाए रखने के प्रयासों में लगे रहे, उन्होंने भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीयता की ऐतिहासिक भूमिका को पहचानते हुए इस सीमा का अतिक्रमण किया। याद रहे, इन दोनों ही शख्सीयतों ने राष्ट्रीय जागरण के दौरान प्रसिद्धि पाई थी और दोनों ही स्वाधीनता प्राप्ति के बाद संग्रहालय की वस्तु मात्र बन कर रह गए।



**टैगोर का एक स्वप्न था- बांग्ला विश्वविद्यालय का। शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था उनके विचार में एक ऐसी आलीशान रेल के समान थी जो बाहर चारों तरफ घने अंधकार के बीच भागती चली जा रही हो, जिसमें बहुत बड़े जनसमुदाय को अछूता छोड़ते हुए कुछ गिने चुने लोगों को ही शिक्षा का विशेषाधिकार प्राप्त हो। उनके अनुसार जब तक मातृभाषा को माध्यम नहीं बनाया जाता, तब तक शिक्षा का सार्वभौमिकरण संभव नहीं।**

टैगोर ने शिक्षा पर सौ से अधिक लेख लिखे वहीं उनके इतर लेखन में भी शिक्षा संबंधी विचार देखे जा सकते हैं। उनके लेखन में रूसो, ड्यूवी, तथा अन्य शिक्षाविदों के विचारों से समानताएं देखी जा सकती हैं। लेकिन उन्होंने खुद अपने विचारों को रचनात्मक ढंग से विकसित किया और शिक्षा जगत में अपना अलग स्थान बनाया था। एक छोटे से आलेख में उनके समग्र शिक्षा संबंधी विचार को छू भर पाना भी लगभग असंभव है। इसलिए, मैं पूरी कोशिश करूंगा कि टैगोर के उन शिक्षा संबंधी विचारों का विश्लेषण कर सकूँ जो मेरी नजर में उन्हें समझने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं और जिनके आधार पर गांधी के साथ उनकी तुलना की जा सकती हो।

टैगोर के शिक्षा संबंधी लेखन को मोटे तौर पर तीन समूहों में बांटा जा सकता है। पहले समूह में हम उनके औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति की सीमाओं को रेखांकित करने वाले आलोचनात्मक लेखों को शामिल करेंगे जैसे 'शिक्षेर हेरफेर' - 1893, 'शिक्षेर बाहन' - 1915, कलकत्ता विश्वविद्यालय में 1933 में 'शिक्षेर बाहन' पर दिया गया उनका व्याख्यान अथवा नई शिक्षा मंडली में 'शिक्षेर स्वांगीकरण' पर 1936 का उनका भाषण तथा कुछ अन्य लेखों को शामिल कर सकते हैं। इन लेखों में उन्होंने मुख्यतः शिक्षा के संदर्भ में इसके माध्यम तथा औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति की अन्य सीमाओं की चर्चा की। उन्होंने मातृभाषा की बजाय अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने को अनुचित बताया। उन्होंने पूरे लगाव के साथ मातृभाषा का महत्व समझाया। उन्होंने लिखा "शिक्षाया मातृभाषाय मातृदुग्ध" (शिक्षा में मातृभाषा शिशु के लिए मां के दूध के समान है)। वे मातृभाषा को उच्चतम शिक्षा तक माध्यम के रूप में अपनाए जाने का पक्ष लेते थे। यहां

तक की वे अंग्रेजी को भी मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाना चाहते थे । उन्होंने इसी उद्देश्य से एक प्रवेशिका 'इंग्रेजी सोपान' भी लिखी । अनेक विद्वानों ने बांग्लाभाषी बच्चों के लिए इस विधि को महत्वपूर्ण माना । टैगोर का एक स्वप्न था- बांग्ला विश्वविद्यालय का । शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था उनके विचार में एक ऐसी आलीशान रेल के समान थी जो बाहर चारों तरफ घने अंधकार के बीच भागती चली जा रही हो, जिसमें बहुत बड़े जनसमुदाय को अछूता छोड़ते हुए कुछ गिने चुने लोगों को ही शिक्षा का विशेषाधिकार प्राप्त हो। उनके अनुसार जब तक मातृभाषा को माध्यम नहीं बनाया जाता, तब तक शिक्षा का सार्वभौमिकरण संभव नहीं । उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि अंग्रेजी माध्यम के सहारे इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । वे परीक्षा केन्द्रित किताबी शिक्षा का विरोध करते थे । उनके अनुसार रटने अथवा पुस्तक के द्वारा सीखने में कोई फर्क नहीं है क्योंकि दोनों ही स्थितियों में जो पुस्तक में है उसी का पुनरुत्पादन मात्र होता है।

इन बिन्दुओं पर गांधी के विचारों में टैगोर के साथ निकटता देखी जा सकती है । वे भी परीक्षा केन्द्रित किताबी शिक्षा के खिलाफ थे तथा रटने की प्रवृत्ति की आलोचना करते थे । उन्होंने पाठ्यक्रम में ज्यादा पुस्तकें न रखने की सलाह दी थी । उनका कहना था कि भारत जैसे गरीब देश में पुस्तकें बहुत सोच विचार कर लागू की जानी चाहिये व उनकी संख्या भी कम होनी चाहिये, अन्यथा गरीब बच्चे शिक्षा अर्जित करने के अवसर से वंचित रह जाएंगे ।

टैगोर की तरह ही वे भी शिक्षा का माध्यम उच्चतम स्तर तक अंग्रेजी को ही बनाए जाने का पक्ष लेते थे । लेकिन शिक्षा में अंग्रेजी के महत्व को लेकर दोनों में भारी मतभेद था । गांधी चौदह साल तक बच्चे को अंग्रेजी पढ़ाए जाने के पक्ष में नहीं थे। यहां तक कि उनकी शिक्षा पद्धति 'नई तालीम' में अंग्रेजी को कहीं कोई जगह नहीं दी गई थी । जबकि टैगोर शिक्षा के आरंभिक समय से ही अंग्रेजी को एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल रखने की बात कहते थे । यहां तक की ग्रामीण बच्चों के विद्यालय 'श्रीनिकेत' में कक्षा एक से ही अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी । हालांकि यहां खुद उनके ही विचारों में विरोधाभास देखा जा सकता है कि 'शिक्षे स्वांगिकरण' में वे शिक्षा में मातृभाषा को मातृदुग्ध के समतुल्य बताते हैं । अन्यत्र अपने बचपन का उदाहरण देते हुए उन्होंने एक बालक के कुछ सीमा तक मातृभाषा पर अधिकार पा लेने के बाद ही उसे अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किये जाने की सलाह दी थी । हालांकि टैगोर का अंग्रेजी से पहला परिचय तब हुआ जब वे 12 वर्ष के थे और बांग्ला पर तब तक उनका अच्छा खासा अधिकार हो गया था।

गांधी इस मामले में अतिवादी थे । वे अंग्रेजी के पूरी तरह खिलाफ थे, चाहे वह माध्यम हो अथवा अनिवार्य विषय के रूप में। वे लिखते हैं कि "भारत में प्रचलित तमाम अंधविश्वासों में इससे बड़ा कोई अंधविश्वास नहीं है कि जीवन में उदारता तथा विचारों में स्पष्टता लाने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य है ।" उनके अनुसार अगर हम राष्ट्रीय स्तर पर आत्मघात करना नहीं चाहते हैं तो हमें अंग्रेजी को अपनी विचार प्रक्रिया का माध्यम बनाने से बचना होगा । इस दृष्टि से गांधी तथा पुनर्जागरण वाले भद्रलोक के बीच मतभेद देखे जा सकते हैं । प्रसिद्ध विद्वान तथा भद्रजनों की 'प्रजाति' के प्रतिनिधि राजेन्द्र मिश्र ने एक बार लिखा था कि अंग्रेजी के परित्याग का अर्थ "बौद्धिक रूप से आत्मघात" करना होगा । इसके विपरीत गांधी यह मानते थे कि राम मोहन राय तथा तिलक और भी बड़े सुधारक तथा विचारक हो सकते थे अगर उन्होंने अंग्रेजी में सोचने तथा अभिव्यक्त करने की लाचारी को स्वीकारा न होता । "इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों ने अंग्रेजी के विपुल साहित्य से अपने ज्ञान को समृद्ध किया था, लेकिन यही ज्ञान उनकी अपनी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति पा कर अधिक महत्वपूर्ण हो सकता था । कोई भी देश अनुवादकों की पीढ़ी तैयार कर राष्ट्र गौरव हासिल नहीं कर सकता ।" गांधी तथा टैगोर के बीच यही मतभेद 1921 के असहयोग आंदोलन के दौरान और बढ़ता गया। गांधी के अंग्रेजी के बहिष्कार तथा औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति के परित्याग के सिद्धांत को टैगोर अपनी स्वीकृति नहीं दे पाए । यहां तक कि टैगोर ने जगतनन्दा राय को लिखे एक पत्र में राष्ट्रवाद को 'भौगोलिक प्रेत' की संज्ञा तक दे डाली । उन्होंने लिखा कि "संपूर्ण विश्व फिलहाल इस प्रेत से आतंकित है । अब समय आ गया है जब इससे पीछा छुड़ा लेना चाहिए ।" यह बात उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'शिक्षे मिलन' के सन्दर्भ में कही थी। इस निबन्ध में उन्होंने पूर्व तथा पश्चिम के बीच संबंधों की पारस्परिकता पर जोर दिया जो 'विश्व भारती' का आधारभूत विचार बना ।

टैगोर पश्चिम से आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक का ज्ञान अर्जित करने व पश्चिम को पूर्व के आध्यात्मिक ज्ञान व त्यागशील विचारों से समृद्ध करना चाहते थे । वे पश्चिम के उपभोक्तावाद का विरोध करते थे । उनके विचार में गांधी का असहयोग, खासतौर पर अंग्रेजी शिक्षा के बहिष्कार का आह्वान, एक प्रतिगामी निर्णय था जो हमारे घरों को बंदीगृह में बदलने वाला था और जिसके कारण राष्ट्रीय जीवन में ताजा विचारों का प्रवेश बंद हो सकता था। गांधी ने इसका जवाब दिया "मैं नहीं चाहता मेरा घर चारों तरफ दीवारों से घिरा हो और उसकी खिड़कियां बंद हों । मैं चाहता हूँ कि सभी संस्कृतियों का जितना संभव हो उतना मेरे घर में खुला आना जाना

हो । लेकिन मैं किसी को भी मुझे उड़ा ले जाने की छूट नहीं दे सकता ।” उन्होंने स्पष्ट किया कि वे अंग्रेजी सीखने के खिलाफ नहीं हैं लेकिन उसके हमारी शिक्षा प्रणाली पर काबिज होने का वे विरोध करते हैं । वे अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम अथवा सबके लिए अनिवार्य विषय के रूप में स्वीकृति नहीं देते।

उस समय टैगोर का ‘शिक्षेर मिलन’ निबन्ध विवादों से घिरा था । अन्य लोगों ने भी इस मुद्दे को उठाया । उपन्यासकार शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय ने इसके जवाब में ‘शिक्षेर विरोध’ नाम से निबन्ध लिखा । उनके निबन्ध का मूल विचार यह था कि टैगोर की पारस्परिक संबंधों की परिकल्पना यथार्थ में संभव नहीं है । उनके अनुसार “पश्चिम हमें कभी भी अपने नवीनतम विज्ञान की जानकारी नहीं देगा। और न ही पूर्व के आध्यात्मिक ज्ञान तथा त्यागशील विचार को अपनी जीवन शैली में शामिल करेगा, इसकी बजाय वह हमेशा विज्ञान तथा तकनीक के नाम पर हमें अपने पर आश्रित बनाये रखेगा और हमारा शोषण करने के लिए इनसे बल प्राप्त करता रहेगा।” उन्होंने गांधी के औपनिवेशिक शिक्षा के साथ असहयोग के आह्वान के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए । उन्होंने कहा कि “ऐसा समय भी आता है जब स्कूलों का बहिष्कार उनमें जाने से ज्यादा शिक्षाप्रद साबित होता है ।”

टैगोर के शिक्षा संबंधी लेखों की पुस्तक का संपादन करते हुए सत्येन्द्रनाथ राय ने शरत्चन्द्र तथा टैगोर दोनों को अपनी-अपनी जगह सही ठहराया । उनके अनुसार टैगोर ने अपने शिक्षा संबंधी विचारों को दार्शनिक आधार पर विकसित किया और सार्वभौमिक सन्दर्भों में उनका विश्लेषण किया, जबकि शरत् ने पहले इन्हें तत्कालीन राजनीति के सन्दर्भ में देखा । लेकिन यह तर्क बहुत संतोषजनक प्रतीत नहीं होता । ‘शिक्षेर मिलन’ भी एक अर्थ में तात्कालिक राजनीति पर टैगोर की प्रतिक्रिया को व्यक्त करता था। भारत की मौजूदा अर्थव्यवस्था भी निस्संदेह ‘शिक्षेर विरोध’ में शरत् द्वारा प्रस्तुत आकलन को ही सही ठहराती है । सत्येन्द्र नाथ राय भी स्वीकार करते हैं कि तात्कालिक अनुभवों के आधार पर सहज ही हमारा झुकाव शरत् की तरफ बढ़ जाता है ।

आजादी के बाद से ही भारत सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में ‘डिपेंडेंसी सिंड्रोम’ (मानसिक गुलामी) से ग्रस्त रहा है, कोई आश्चर्य नहीं कि आधुनिकतम इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों की बात तो हम छोड़ ही दें, आज तक अपने स्तर पर भारत एक शेविंग ब्लेड बनाने की तकनीक भी विकसित नहीं कर पाया है । भू-मंडलीकरण के नाम पर भारत अमरीका व अन्य देशों का स्थायी उपनिवेश बनता जा रहा है । इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हमारी राष्ट्रीय संस्कृति को नष्ट कर इन विकसित देशों की सर्वाधिक असभ्य पूंजीवादी संस्कृति को प्रोत्साहन दे रहा है ।



**गांधी एक मात्र ऐसे भारतीय नेता थे जिन्होंने इन खतरों को भांप लिया था लेकिन जिन पर हम कोई रोक नहीं लगा पाए । उनके पास आधुनिकता के सिद्धांत पर आधारित विकासवाद की तार्किक परिणति को देखने की दिव्य दृष्टि मौजूद थी । वे यूरोप तथा अमरीका में चलाई जा रही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की अपर्याप्तता तथा उसमें मौजूद शोषणकारी स्थितियों का पूर्वानुमान लगा सकते थे ।**

गांधी एक मात्र ऐसे भारतीय नेता थे जिन्होंने इन खतरों को भांप लिया था, लेकिन जिन पर हम कोई रोक नहीं लगा पाए । उनके पास आधुनिकता के सिद्धांत पर आधारित विकासवाद की तार्किक परिणति को देखने की दिव्य दृष्टि मौजूद थी। उन्होंने विकास की इस प्रक्रिया में व्याप्त भूल को भली-भांति पहचान लिया था । वे यूरोप तथा अमरीका में चलाई जा रही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की अपर्याप्तता तथा उसमें मौजूद शोषणकारी स्थितियों का पूर्वानुमान लगा सकते थे ।

वे एकमात्र ऐसे नेता थे जिन्होंने उन देशों में चलाई जा रही व्यवस्था की नकल करने की बजाय इसका विकल्प प्रस्तुत किया। उन्होंने मानवता के भविष्य के लिए ग्राम आधारित अर्थ व्यवस्था तथा कार्य आधारित शिक्षा के विकल्प दिये ।

गांधी के लिए शिक्षा उनकी समग्र राजनीतिक कार्ययोजना का अनिवार्य हिस्सा थी । उनका विश्वास था कि राजनीति को व्यापक मानव मूल्यों से प्रेरित होना चाहिये ।

गांधी के लिए स्वराज का अभिप्राय राजनीतिक आजादी मात्र नहीं था । उनके यहां स्वराज का अर्थ था ‘जनता का स्वशासन’ । देशभक्ति से उनका आशय सम्पूर्ण मानवता के कल्याण से था । उनके अनुसार किसी भी शोषणकारी समाज में स्वराज नहीं आ सकता । उनके विचार में जनता के इस स्वशासन की प्राप्ति के लिए जन शिक्षा की एक राष्ट्रीय कार्ययोजना होनी चाहिये ।

वे लिखते हैं, “स्वराज एक ऐसा तीर्थ है जिसकी चढ़ाई बेहद दुरूह है । इसमें पर्याप्त सावधानी की जरूरत है । इसका अभिप्राय है विशाल संगठन क्षमता, इसका अभिप्राय है विशुद्ध सेवा के उद्देश्य से गांवों में प्रवेश करना । दूसरे शब्दों में इसका अभिप्राय है आम आदमी के लिए राष्ट्रीय शिक्षा । इसका अभिप्राय है जनता में राष्ट्रीय चेतना जागृत करना ।”

टैगोर भी गांवों का उद्धार तथा ग्रामीणों में आत्मशक्ति को जागृत करना चाहते थे। उन्होंने गांवों के कल्याण के लिए रचनात्मक काम किए जाने को बहुत महत्व दिया तथा आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता पर जोर दिया। यहां तक कि उन्होंने अपने शिक्षा संबंधी प्रयोग शहर से दूर प्रकृति के नजदीक बोलपुर से आरंभ किए, इसी से उनकी प्राथमिकताओं को पहचाना जा सकता है। टैगोर के लेखन के दूसरे समूह में उनके शिक्षा संबंधी विचारों के विकास से जुड़े लेखों को रखा जा सकता है, जिनमें 'तपोवन' 1909, 'अपोइट्ट्स स्कूल' - 1924, 'आश्रमेशिक्षा' 1936 व 'आश्रमेशिक्षा' को रखा जा सकता है जो उनके जीवन के अंतिम वर्ष 1941 में प्रकाशित हुआ। इस समूह में उनके विश्व भारती की पुस्तिकाओं में संकलित लेखों को भी शामिल किया जा सकता है। उनके लेखन के तीसरे समूह में पुस्तक 'शांतिनिकेतन विद्यालयेशिक्षादर्शा' में संकलित लेख तथा आश्रमवासियों, मित्रों व रिश्तेदारों को लिखे गए उन पत्रों को शामिल किया जा सकता है जिनमें शांतिनिकेतन आश्रम को कैसे चलाया जाए? इस पर चर्चा होती।

टैगोर की शिक्षा संबंधी आधारभूत स्थापनाएं उनके लेख 'तपोवन' में मिल जाती हैं। शिक्षा के बारे में उनका विचार तथा दर्शन विशेषतः उपनिषदों से प्रेरित था। निस्संदेह टैगोर संस्कृत साहित्य, कालिदास के काव्य इत्यादि, में वर्णित प्राचीन ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन की पद्धति से बहुत प्रभावित थे। उनके विचारों की दिशा को समझने में तपोवन, तपस्या, आश्रम, संगम आदि शब्दों का बड़ा महत्व है। वे इन शब्दों का प्रयोग बड़े विशिष्ट उद्देश्यों के लिए करते थे। उनके शिक्षा संबंधी विचार का केन्द्रीय तत्व आध्यात्म के स्तर पर मानव तथा प्रकृति का मिलन था। वे बच्चे को प्रकृति की गोद में निर्बंध रूप से विकसित होने का अवसर प्रदान करने पर जोर देते थे। टैगोर पर रूसो तथा अंग्रेजी रोमैंटिसिज्म के कवियों; शैली, वर्ड्सवर्थ; आदि; के प्रभाव को रेखांकित किया जा सकता है। रूसो तथा गांधी की तरह ही टैगोर भी यह मानते थे कि शिक्षा के लिए गांव शहर से कहीं उपयुक्त स्थान है। इस लिहाज से वे अत्यधिक रोमैंटिक थे। उनके अनुसार शिक्षा का अभीष्ट न निपुणता अर्जित करना है और न परीक्षा उत्तीर्ण करना ही। सच्ची शिक्षा तो तपोवन में तपस्या के माध्यम से प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर ही अर्जित की जा सकती है। वे आगे लिखते हैं, "हमारा स्कूल सिर्फ इंद्रियों का अनुभव कराने अथवा ज्ञान देने तक ही सीमित न हो बल्कि 'बोध' को भी शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। मेरे विद्यालय की स्थापना का मूल स्वतंत्रता के लिए व्यापकता की स्मृति में था...

पूर्ण स्वतंत्रता उन संबंधों को पूर्ण सामंजस्य में से है जो हम इस विश्व में बनाते हैं - इस विश्व को जानने की प्रक्रिया में बनने वाले संबंध नहीं बल्कि इसका हिस्सा होने में बनने वाले संबंधों में।" अपने शैक्षणिक मिशन के बारे में वे लिखते हैं, "मैंने अपना संस्थान शहर से दूर एक ऐसे सुरम्य स्थान पर स्थापित किया था जहां पुरातन पेड़ों की छांव और क्षितिज तक फैले खुले खेतों के बीच बच्चों को अधिकतम स्वतंत्रता मिल सके।... आरंभ से ही मैंने उस वातावरण को बनाने का प्रयत्न किया जो मेरे विचार से कक्षा-शिक्षण से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है।"

हालांकि बाद के समय में टैगोर शांतिनिकेतन स्कूल से काफी निराश हुए थे। उन्हें लगता था कि उनके विचारों का यहां ठीक क्रियान्वयन नहीं हो पाया है। उन्होंने बताया कि अभिभावकों की हठ के कारण उन्हें यहां भी परीक्षा प्रणाली को लागू करना पड़ा जिसके कारण यहां के वातावरण की उन्मुक्तता नष्ट हुई। वित्तीय संकट से निपटने के लिए उन्हें मजबूरन अभिजात्य वर्ग के परिवारों के बच्चों को यहां प्रवेश देना पड़ा। यहां अभिभावक बच्चों के भविष्य को लेकर सतर्क रहते और उन्होंने परीक्षा प्रणाली लागू करने के लिए दबाव बनाया। अपने प्रयोग को जारी रखते हुए टैगोर ने 1924 में कुछ अनाथ बच्चों तथा जिनके अभिभावक अन्यत्र पढ़ने के लिए भेजने में असमर्थ थे, ऐसे लड़कों को लेकर एक और विद्यालय शुरू किया। वित्तीय समस्या के चलते शुरू में वे ज्यादा बच्चों को प्रवेश नहीं दे पाए। टैगोर को इस स्कूल से बड़ी उम्मीदें थीं। उन्नीस दिसम्बर 1937 को उन्होंने एमहर्स्ट को एक पत्र में लिखा 'शांतिनिकेतन के स्कूल तथा कालेज दिन-ब-दिन देशभर में मौजूद अन्य किसी स्कूल या कालेज के समान होते जा रहे हैं, जहां बच्चों के दिमाग पिंजरे में बंद परिदे के समान रह जाते हैं जिनके जीवन मूल्यों का निर्धारण विदेशी शिक्षा पद्धति द्वारा लागू किया जाता है। शांतिनिकेतन की तुलना में शिक्षा सत्र में कहीं अधिक संभावना नजर आती है। उनका मानना था कि शिक्षा सत्र उनकी शिक्षा संबंधी अवधारणा को साकार रूप दे पाएगा। लेकिन अफसोस उनकी यह अपेक्षा भी पूरी नहीं हो सकी।

सुनील चन्द्र सरकार के अनुसार 'श्रीनिकेतन' में जाकर उन्होंने व्यावहारिक रोजगार को प्रमुखता दी जिसके माध्यम से छात्र सीधे बाह्य जीवन के अनुभवों से जुड़े। उल्लेखनीय है कि एल.के.एमहर्स्ट ने पहले ही स्कूल आफ एग्रीकल्चर के निदेशक के रूप में ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम शुरू कर दिया था। टैगोर इस संस्थान के चेयरमैन थे। श्रीनिकेतन के अपने प्रयोग के दौरान ग्रामीण समाज की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए सहकारिता आधारित आत्मनिर्भर सामुदायिक विकास के कार्यक्रम ने उनका ध्यान आकर्षित किया।

ऐसा लगता है कि इस दौरान टैगोर ड्यूवी के विचारों तथा प्रयोगों से प्रभावित हुए थे। संभवतः यह प्रभाव उन्होंने एमहर्स्ट से ग्रहण किया हो, जो स्वयं ड्यूवी के छात्र रह चुके थे। श्रीनिकेतन के प्रयोग के पीछे प्रेरणा टैगोर की हो सकती है लेकिन इसके पीछे जो दिमाग काम कर रहा था, वह एमहर्स्ट का ही था। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि टैगोर केशिक्षा संबंधी विचारों में 'तपोवन' के वर्षों बाद भी कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ था और यहां हम यह देखते हैं कि टैगोर के इन सिद्धांतों का श्रीनिकेतन के साथ कोई विरोध भी नहीं था। तपोवन 1909 में लिखा गया था और 'आश्रमेर शिक्षा' 1936 में। लेकिन इन दोनों लेखों में मुश्किल से ही कोई अंतर मिलेगा।

1901 में बोलपुर में 'ब्रह्मचर्य' विद्यालय की स्थापना की गई। उसी दौरान टैगोर उपनिषदों की प्रेरणा से 'नेवैद्य' कविता लिख रहे थे। यह 1902 की बात है, जब बह्मबांधव उपाध्याय ने टैगोर को गुरुदेव के संबोधन से पुकारा, जो बाद में हमेशा के लिए उनके व्यक्तित्व से जुड़ गया। इसी समय में टैगोर अपने स्कूलों के लिए एक 'संहिता' भी लागू करना चाहने लगे थे। मनोरंजन बंधोपाध्याय को एक पत्र में उन्होंने लिखा "जो कुछ भी हिन्दू धार्मिक संहिता के विरुद्ध है, उसके लिए आश्रम के विद्यालय में कोई स्थान नहीं है।" उन्होंने आगे लिखा "संहिता में वर्णित नियमों के तहत छात्र अपने ब्राह्मण अध्यापकों का अभिवादन चरण स्पर्श कर करेंगे जबकि अन्य शिक्षकों को मात्र हाथ जोड़ कर नमस्कार किया करेंगे।" शिक्षा संबंधी अवधारणाओं के विकास क्रम के

तहत 1909 में उन्होंने 'तपोवन' लिखा, इस निबंध का कथ्य उपनिषदों का ज्ञान ही था। इससे कुछ वर्ष पहले 1904 में 'स्वदेशी समाज' में उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन को भाषा प्रदान की थी। इस लेख में उन्होंने ग्रामीण जीवन के विघटन के कारणों का विश्लेषण करते हुए इसके प्रति चिंता जताई थी। उन्होंने गांवों के पुनर्निर्माण के लिए कुछ ठोस सुझाव भी दिए।

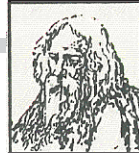
1911 में उनके नाटक 'अचलायतन' के लिखे जाने के समय से ही कर्मकांडी ब्राह्मणवाद के प्रति उनके रवैये में बदलाव दिखाई देने लगा था। इस नाटक में उन्होंने धर्म के वास्तविक

उद्देश्यों की बजाय उसके कर्मकांड के प्रति कट्टर लोगों की जमकर आलोचना की। कहीं उन्हें गलत न समझ लिया जाए, इसके लिए उन्होंने ललित कुमार बंदोपाध्याय को एक पत्र में लिखा, ताकि उनके बारे में कर्मकांड तथा मंत्रविरोधी होने की गलतफहमी न पाली जाए। उन्होंने ज्ञान, जिज्ञासा तथा बौद्धिक विकास की राह में बाधा बनने वाले कर्मकांड की निंदा की, वहीं मानसिक विकास तथा ज्ञान की प्राप्ति में मदद करने वाले रीति रिवाजों की प्रशंसा भी की। 1916 में 'बालक' की उनकी कविताओं में उनके इस दृष्टिकोण के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। इसमें उन्होंने यौवन तथा साहस के गीत गाए, वहीं राष्ट्रवाद को भौगोलिक प्रेत बताते हुए खारिज किया

व विश्व आदर्श के रूप में मानवता की महिमा का बखान किया। उन्होंने पश्चिमी संस्कृति की संकीर्णताओं की आलोचना की व उपनिषद की आत्मा से विमुख न होने की बात कही। 1920 के मध्य में जब श्रीनिकेतन का उनका प्रयोग प्रगति की राह पर था, तब ही उन्होंने अपने दो प्रसिद्ध नाटक 'मुक्तिधरा' (1922) व 'रक्तकरवी' (1924) लिखे। इन नाटकों में नगरीय जीवन की यांत्रिकता के प्रति उनकी आपत्तियों को देखा जा सकता है। दोनों ही नाटकों में प्रकृति पर मशीनी तकनीक के हावी होते जाने को लेकर चिंता थी। टैकनोक्रेट समाज के शोषणकारी चरित्र के बारे में उनकी आपत्तियां जाहिर थीं। 1930 के दौरान वे रूस गए। इस बीच 1933 में 'शिक्षेर विकीरण' व 1936 में, 'शिक्षेर स्वांगीकरण' नामक लेख उन्होंने लिखे। शिक्षेर 'स्वांगीकरण'

में उन्होंने अपने अनेक पुराने विचारों को ही दोहराया जो बाद तक भी प्रासंगिक थे। यहां तक कि टैगोर के अधिकांश उद्धरण इन्हीं दो लेखों से दिए जाते हैं। उनके शुरुआती लेख 'शिक्षेर हेरफेर' से इन लेखों में कोई भारी अंतर नहीं मिलेगा। इसी तरह उनके प्रसिद्ध लेख 'तपोवन' के सिद्धांतों में 1941 में 'आश्रमेर शिक्षा' लिखे जाने तक भी कोई बड़ा बदलाव नहीं आया था।

विश्व भारती के एक पूर्व उपाचार्य के अनुसार टैगोर के शिक्षा संबंधी दार्शनिक प्रतिमानों में कोई भी अंतर लक्षित कर पाना काफी कठिन काम है। लेकिन यह भी सच है कि उनके शिक्षा संबंधी विचारों के विकसित होने के साथ-साथ उनका जोर एक बिन्दु से दूसरे पर स्थानान्तरित होता रहा।



**हालांकि बाद के समय में टैगोर शांतिनिकेतन स्कूल से काफी निराश हुए थे। उन्हें लगता था कि उनके विचारों का यहां ठीक क्रियान्वयन नहीं हो पाया है। उन्होंने बताया कि अभिभावकों की हठ के कारण उन्हें यहां भी परीक्षा ....प्रणाली को लागू करना पड़ा जिसके कारण यहां के वातावरण की उन्मुक्तता नष्ट हुई। वित्तीय संकट से निपटने के लिए उन्हें मजबूरन अभिजात्य वर्ग के परिवारों के बच्चों को यहां प्रवेश देना पड़ा।**

1947 में त्रैमासिक विश्व भारती के विशेषांक में टैगोर व गांधी के शिक्षा संबंधी विचारों के तुलनात्मक अध्ययन पर अनन्तनाथ बसु व सुनील चन्द्र सरकार के दो लेख संकलित हैं। महत्वपूर्ण होते हुए भी दोनों ही लेखों में गांधी तथा टैगोर के बीच के मतभेदों को नजरअन्दाज किया गया है। सरकार ने लिखा कि दोनों शिक्षा प्रणालियों की तुलना करते हुए रक्त-संबंधों की हद तक समानताएं मिलती हैं, जबकि मतभेद नाम मात्र को ही हैं। बसु ने दोनों के बीच मतभेदों को रेखांकित करने का प्रयास किया लेकिन वे लिखते हैं कि जहां तक क्रियाशीलता के सिद्धांत का प्रश्न है दोनों के दर्शन में मूलतः कोई विरोध नहीं है। लेकिन जैसे ही क्रियाशीलता के सिद्धांत को पाठ्यक्रम में अधिक सजगता के साथ काम में लिये जाने की स्थिति आती है, टैगोर सिद्धांत में दूर तक जाने की बजाय एक समानान्तर पाठ्यक्रम में इसके साथ संगति बैठा लेते हैं ... इस भिन्नता का एक कारण तो यह है कि टैगोर शिक्षा का दर्शन गढ़ रहे थे। लेकिन यह तर्क बहुत संतोषजनक प्रतीत नहीं होता। गांधी के लिए भी क्रियाशीलता का सिद्धांत मात्र अथवा पाठ्यक्रम निर्माण का प्रश्न नहीं था। बल्कि इससे कहीं अधिक था। गांधी उत्पादक कार्यों के माध्यम से शिक्षा देना चाहते थे, उनके लिए आत्मनिर्भरता का प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण था।

गांधी के अनुसार 'शारीरिक श्रम का तात्पर्य स्कूल के संग्रहालय के लिए वस्तुएं अथवा खिलौने तैयार करना नहीं है जिनका वास्तव में कोई मूल्य न हो। बच्चे बाजार में रखे जाने लायक वस्तुएं तैयार करें। बच्चों को यह काम इस तरह से नहीं सीखना है जैसे किसी फैक्टरी में शुरुआत में मालिक के चाबुक के डर से वे सीखते हैं, बल्कि वे स्वयं इस तरह का काम करने में आनन्द का अनुभव करें तथा इससे उनका बौद्धिक विकास भी हो। "आधारभूत शिक्षा का गांधी की राजनीतिक कार्ययोजना में महत्वपूर्ण स्थान था। उनका मानना था कि मौजूदा शिक्षा प्रणाली में तीन बड़ी खामियां हैं। पहली, यह एक विदेशी संस्कृति पर आधारित है जिसमें अपनी संस्कृति को पूरी तरह दरकिनार कर दिया गया है। दूसरी, यह भावनाओं तथा हाथ के हुनर की उपेक्षा करती है, और सिर्फ दिमाग से जोड़ती है। तीसरी, वास्तविक शिक्षा किसी भी विदेशी माध्यम से प्राप्त कर पाना असंभव है।" यंग इंडिया में 1921 में उन्होंने लिखा कि वे जिस शिक्षाप्रणाली की अनुशंसा करते हैं, वह तीन प्रयोजनों को पूरा करेगी, शिक्षा आत्मनिर्भर बनने में सहायक होगी, बच्चों के दिमाग के साथ-साथ उनके शारीरिक प्रशिक्षण पर भी ध्यान देगी तथा विदेशी वस्त्रों के पूर्ण बहिष्कार का मार्ग प्रशस्त करेगी। इन सबसे महत्वपूर्ण यह कि इस तरह तैयार हुए बच्चे आत्मनिर्भर तथा आत्मविश्वास से भरे पूरे होंगे। वे आगे

लिखते हैं, "इन विद्यालयों में लड़कों को खेलने की बजाय खेतों में हल चलाना सिखाया जाएगा। यह धारणा ही भ्रान्त है कि अगर हमारे लड़के क्रिकेट या फुटबाल खेलना नहीं जानेंगे तो उनका जीवन नीरस या उबाऊ होगा।" उन्होंने लिखा कि "कढ़ाई एवं बुनाई जैसे ग्रामीण हस्तशिल्प के माध्यम से शिक्षा देने की मेरी योजना का उद्देश्य बहुत दूरदृष्टि के साथ गुपचुप सामाजिक क्रांति की प्रक्रिया की शुरुआत करना है।"

टैगोर हालांकि गांधी के आत्मनिर्भरता पर जोर देने के सिद्धांत से सहमत नहीं हो सके और उन्होंने 29 दिसम्बर, 1937 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाउस में होने वाली नई शिक्षा मंडली की बैठक में इस विचार के प्रति अपनी लिखित असहमति भेजी। उनके विचार में प्राथमिक शिक्षा का यह सिद्धांत व्यक्ति के विकास से ज्यादा उसकी भौतिक जरूरतों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। उन्होंने एक ऐसी व्यवस्था को समर्थन देने में असमर्थता जताई जिसमें खेलों का स्थान उत्पादक कार्यों को दे दिया जाए और बच्चों की मेहनत से तैयार वस्तु के लाभ का एक हिस्सा अध्यापक अपने पास रख ले। यहां टैगोर एवं गांधी के जीवन तथा काम के प्रति नजरिये में स्पष्ट भेद को देखा जा सकता है। यहां तक कि जाकिर हुसैन ने वर्धा सम्मेलन के दौरान अपने भाषण में कहा कि "इस तरह तो अध्यापक दास मालिकों की भूमिका में आ जायेंगे और मासूम छात्रों के श्रम का शोषण करेंगे। अगर ऐसा होता है तो 'तकली' पुस्तक से भी कहीं अधिक घातक साबित होगी। और हम अपने देश में एक दबी हुई दास प्रथा को जन्म दे रहे होंगे।"

के.टी. शाह ने भी कहा कि "मौजूदा प्रणाली में ज्ञान को ढूंढने के दोष की जगह अतिरिक्त श्रम और छात्रों के श्रम से गलत फायदे उठाने जैसी प्रवृत्तियां धीरे-धीरे उभार पाकर शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को पीछे धकेल देंगी।" गांधी ने चेतावनी दी थी कि "अगर सचमुच मशीनें उतनी ही अपरिहार्य हों तो आप मेरे सुझाव को दरकिनार कर नया प्रस्ताव तैयार कर सकते हैं।" इसके बावजूद वर्धा समिति की रिपोर्ट में गांधी के शिक्षा में आत्मनिर्भरता के सिद्धांत को नामंजूर कर दिया गया। यहां तक कि हमारे आर्थिक ढांचे में गांधी के विकास के सिद्धांत से भी दोनों ने ही मतभेद जाहिर किया। शाह के अनुसार मानव श्रम को महत्व देना ठीक है, लेकिन हम यह नहीं भूल सकते कि हम कल-युग में जी रहे हैं। अगर मानवीय श्रम को अधिक महत्व देते हुए मशीन से दूरी बना कर रखी गई तो वह देश के आर्थिक विकास में बड़ी बाधा बन सकती है।

गांधी एकमात्र ऐसे भारतीय नेता थे जिन्होंने शिक्षा को श्रमशील लोगों के नजरिये से देखा। गांधी के आत्मनिर्भरता के सिद्धांत को

समझने की कोशिश में यही वह जगह है जहां से हम अन्य नेताओं के साथ उनके मतभेद को समझ सकते हैं। वे यह मानते थे कि श्रमिक परिवारों के बच्चे बहुत उत्साह के साथ अपने माता-पिता का काम काज में हाथ बंटते हैं। वे जानते हैं कि काम के बिना रोटी नहीं मिल सकती। यहां तक कि गांधी की लाभ आधारित उत्पादक काम केन्द्रित शिक्षा पद्धति को अगर विश्व स्तर पर लागू किया जाता तो खेतीहर समाजों से बालश्रम का उन्मूलन किया जा सकता था। इससे उत्पादकता के सन्दर्भ में खेती ही मजदूरों की दशा भी सुधार सकती थी। इससे भू-स्वामियों के खिलाफ अपने संघर्ष के लिए उन्हें आर्थिक आधार उपलब्ध हो सकता था।

हालांकि स्वयं गांधी ने अपनी शिक्षा नीति के पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत नहीं किया था। संभवतः इसका कारण उनका अहिंसावादी राजनीतिक विचार था जिसके चलते वे वर्ग संघर्ष के हथियारों को धारदार बनाने का पक्ष नहीं ले सकते थे। इसीलिए उन्होंने कहा कि इस तरह से तैयार बच्चा आत्मनिर्भर होगा तथा आत्मविश्वास से भरापूरा होगा। इससे स्कूल या घर के बीच में वह निरंतरता बनाए रख सकेगा।

मशीनी व्यवस्था के प्रति गांधी के विरोध को हालांकि समझा तो जा सकता है लेकिन उसे जीवन में उतारा नहीं जा सकता था। गांधी के इतर लेखन से भी पता चलता है कि स्वयं गांधी जी भी इससे अनभिज्ञ नहीं थे और वे स्वयं भी एक सीमा तक मशीन के उपयोग पर सहमत थे। जैसे कि वे मानते थे कि सिलाई मशीन के उपयोग से हाथ से अधिक उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन वे मशीन के अधीन हो जाने का विरोध करते थे। वे मानव श्रम तथा प्राकृतिक संपदा पर मशीन के हावी हो जाने के खिलाफ थे। यहां तक टैगोर के 'मुक्तोधरा' तथा 'रक्तकरबी' नाटकों में टैगोर भी किसी हद तक मशीनीकरण से खिलाफत करते दिखाई देते हैं। विचार के स्तर पर दोनों ही ने मशीनी शहरी सभ्यता का उसके शोषणकारी तथा उपभोक्तावादी चरित्र के कारण विरोध किया।

टैगोर चूंकि कार्यसाधकता पर अधिक बल देते थे अतः वे एक सीमा तक ही सही, आधुनिकीकरण को भी उचित मानते थे।

अंततः राजनीतिक दर्शन विकसित करना कवि टैगोर का अभीष्ट नहीं था। जबकि गांधी को उपनिवेशवादी आर्थिक तथा सांस्कृतिक वर्चस्व की राजनीति के खिलाफ मानवीय श्रम के नीति शास्त्र पर आधारित राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत करना था। श्रमशील लोगों के मानसिक संसार के प्रति गांधी के पास एक अद्भुत संवेदनशीलता मिलती है। वे अपने राजनीतिक दर्शन को श्रमशील लोगों की जरूरतों का प्रतिनिधित्व करने वाली तथा खेतीहर समाजों की आकांक्षाओं के अनुरूप विकसित करना चाहते थे। श्रमशील लोगों की एकमात्र पूंजी उनका श्रम ही होता है, अतः मानव श्रम को, उनके द्वारा दिए जाने वाले महत्व को, किसी भी रूप में अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। बड़े उद्योग अन्यो के श्रम को अपने में जज्ब कर लेते हैं। श्रम का पदार्थीकरण किए जाने पर वह अमानवीय हो जाता है। गांधी मानते थे कि आधुनिक मशीनी सभ्यता का कोई नैतिक आधार नहीं है और अंततः वह सर्वनाश की ओर ले जाने वाली है।



**“आधारभूत शिक्षा का गांधी की राजनीतिक कार्ययोजना में महत्वपूर्ण स्थान था। उनका मानना था कि मौजूदा शिक्षा प्रणाली में तीन बड़ी खामियां हैं। पहली यह एक विदेशी संस्कृति पर आधारित है जिसमें अपनी संस्कृति को पूरी तरह दरकिनार कर दिया गया है। दूसरी, यह भावनाओं तथा हाथ के हुनर की उपेक्षा करती है, और सिर्फ दिमाग से जोड़ती है। तीसरी वास्तविक शिक्षा किसी भी विदेशी माध्यम से प्राप्त कर पाना असंभव है।”**

गांधी के इन विचारों से सबका सहमत होना जरूरी नहीं, लेकिन औद्योगिक रूप से विकसित समाजों में मानवीय मूल्यों के विघटन तथा सांस्कृतिक हास को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यहां तक कि अगर हम भारत जैसे देश में आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा नीति के व्यापक प्रश्न को छोड़ दें, जो कि इतिहास तथा हाल के विकास से जाहिर है कि हमने छोड़ दिया है, तो टैगोर के अपने शांतिनिकेतन के प्रयोग में असफल होने का मूल कारण यह कि उन्हें वित्तीय कारणों से जिन अभिजात

वर्ग के बच्चों को प्रवेश देना पड़ा, उनके अभिभावकों के दबावों को भी मानना पड़ा। वहीं श्रीनिकेतन को स्थापित करने के लिए उन्हें एमहर्स्ट से बाहर से सहायता लेनी पड़ी जिसका सी.एफ.एन्ड्र्यूज ने विरोध किया। हालांकि श्रीनिकेतन की विफलता पर अब तक भी विद्वानों ने ज्यादा विचार-विमर्श नहीं किया है। निस्संदेह गांवों का पुनर्निर्माण श्रीनिकेतन की कार्ययोजना का अभिन्न अंग था। टैगोर के अनुसार “मैंने अपने लेख ‘स्वदेशी समाज’ में लिखा है कि हमें गांव को केन्द्र में रखते हुए अपने राष्ट्रीय चरित्र का पुनर्निर्माण करना होगा।” श्रीनिकेतन पोल्ट्री, डेयरी तथा कृषि में सुधार संबंधी तमाम प्रयोगों के बावजूद सफल नहीं हो सकी। टैगोर का दूसरा



शिक्षा संबंधी प्रयोग “शिक्षा सत्र” बहुत थोड़े समय में ही किसी साधारण स्कूल जैसा हो गया। टैगोर की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाने के बावजूद ‘शांति निकेतन’ स्कूल बहुत बाद तक एक आकर्षण बना रहा। संभवतः जिसका एक कारण अभिजात्य वर्ग से इसकी संबद्धता हो, जबकि शिक्षा सत्र को भुला दिया गया।

आजादी के 49 साल बाद आज भारत अपनी प्राथमिक शिक्षा के लिए कोष जमा करने के लिए दुनिया के सामने हाथ फैला रहा है। भारत की शिक्षा नीति को निर्धारित करने का अधिकार विश्व बैंक के पास है। जिस मार्क्सवादी बंगाल में किसी समय विश्व बैंक विरोधी नारों से कलकत्ता की दीवारों को रंग दिया गया था, जहां इसके अधिकारियों को ‘वापस जाओ’ के नारों का सामना करना पड़ा था, वहीं आज उसके ठीक विपरीत उसी बैंक के अधिकारियों के स्वागत में लाल कालीन बिछाए जाते हैं और उसकी मदद स्वीकार की जाती है। आज वहीं बिना किसी संदेह या संकोच के जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डीपीईपी) के लिए विदेशी एजेंसियों से सहायता ली जा रही है। बंगाली मार्क्सवादियों का मानसिक दिवालियापन तब और भी ज्यादा उजागर हो जाता है जब प्रारंभिक कक्षाओं के लिए अंग्रेजी की पुस्तिका तैयार करने के लिए वे ब्रिटिश विशेषज्ञों को आमंत्रित करते हैं। यह सोचना ही कितना हास्यास्पद है कि विदेशी अनुदानों के सहारे सरकारी प्राथमिक शिक्षा के दुर्गुणों से बाहर निकला जा सकता है। बल्कि आकस्मिक तौर पर मिलने वाला यह अनुदान भ्रष्टाचार को बढ़ावा ही देगा जिसमें कि पहले ही शिक्षा जगत आकंठ डूबा हुआ है और जो इसकी जड़ों तक पहुंचता जा रहा है।

इस सन्दर्भ में यह जानना प्रासंगिक होगा कि कैसे गांधी ने आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा प्रणाली का विचार विकसित किया। यह पता लगाने की कोशिश की गई कि एक छात्र उत्पादक कार्यों के माध्यम से शिक्षा हासिल करते हुए कितना कमा सकता है। इसमें यह पाया गया कि एक छात्र दूसरे ही साल में अपने काम के माध्यम से एक आना प्रति घंटे में कमा सकता है, यानि कि महीने के 26 दिनों में चार घंटे प्रतिदिन के हिसाब से काम करते हुए वह 6 रुपये प्रतिमाह कमा सकता है। बुनियादी शिक्षा योजना में एक अध्यापक का मासिक वेतन 25 रुपये निर्धारित किया गया। अब पच्चीस छात्र प्रतिमाह अपनी आय के दो रुपये दे देते हैं तो दो अध्यापकों का वेतन निकाला जा सकता है। तब भी हर महीने उनके पास चार रुपये आठ आने बच जाया करेंगे। वर्ष 1930 के आसपास बंगाल में एक खेतीहर मजदूर की मासिक आय 20 रुपये प्रतिमाह थी। सर्वाधिक आय जूट की खेती के दिनों में 11 आना प्रतिदिन हुआ करती थी और सबसे कम अकाल के दिनों में

तीन आना पर ठहर जाती। एक खेतीहर मजदूर को एक या आधा घंटे के भोजनावकाश के अलावा प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक कड़ी मेहनत करनी होती। उन दिनों पूर्वी बंगाल में एक रुपये में 7 सेर चावल तथा बर्धवान में 11 सेर चावल मिला करता। तब एक छात्र अपनी मासिक आय से एक मांड (38 किलो) चावल प्राप्त कर सकता था। निस्संदेह एक खेतीहर मजदूर परिवार के लिए यह बड़ी मदद साबित हो सकती थी। इस तरह इन परिवारों के छात्र चावल लायक आय प्राप्त कर सकने पर अपना एक समय का भोजन साथ लेकर स्कूल आ सकते थे। ग्रामीण बंगाल के आर्थिक जीवन की समझ रखने वाले लोग इस तरह की आमदनी के महत्व को समझ सकते हैं।

श्रमशील परिवारों के बच्चों को अगर भरपेट खाना मिल सके तो वे खुशी-खुशी इस तरह के श्रम में संलग्न होंगे। उन्हें काम करने में शर्म नहीं आती, बल्कि वे इसके पर्याप्त अभ्यस्त होते हैं। किसी भी खेतीहर समाज में काम सिर्फ जीविकोपार्जन का साधन ही नहीं जीवन शैली का भी अभिन्न अंग होता है। खेतीहर समाजों की इस कार्य संस्कृति को समझे बिना गांधी की शिक्षा नीति को समर्थन दे पाना संभव नहीं।

मेरी समझ में टैगोर की शिक्षा नीति में खेल तथा रोमांच का विशेष महत्व था। वहीं गांधी के लिए उत्पादक कार्य अधिक महत्व रखते थे। टैगोर काम को खेल में रूपांतरित करना चाहते थे। जबकि गांधी काम में ही खेल का सा आनन्द महसूस करने की बात करते। टैगोर के शिक्षा संबंधी दर्शन में प्रकृति, रचनात्मक गतिविधियों, जैसे संगीत, नाटक, चित्रकारी, नृत्य आदि को महत्व दिया गया, वहीं गांधी ने संगीत तथा चित्रकला को महत्व तो दिया लेकिन वे जीवन का सौन्दर्य मानवीय श्रम तथा उत्पादक कार्यों में ही पाते थे। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याएं उनकी विचार प्रक्रिया के साथ गुंथी हुई थी। टैगोर ने अपने मिजाज के अनुसार फुरसत की संस्कृति को बढ़ावा दिया, वहीं गांधी ने अपनी प्रकृति के अनुरूप कार्य की संस्कृति को आगे बढ़ाने की बात कही। इस तरह जीवन के प्रति दोनों के नजरिये में ही सैद्धांतिक भिन्नता मौजूद थी। हालांकि दोनों ही प्रेम तथा स्वतंत्रता के शाश्वत मूल्य से संचालित थे। दोनों ने पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति की भर्त्सना की। गांधी के मानवीय मूल्यों में सादगी तथा श्रमशीलता को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था। टैगोर भी जीवन में सरलता तथा श्रम के महत्व का सम्मान करते थे, लेकिन उनके लिए जीवन की सार्थकता उसके आनन्दमय होने में थी। इस तरह एक विद्वान द्वारा प्रतिपादित इस बात को सही माना जा सकता है कि टैगोर भक्ति-मार्गी थे जबकि गांधी ने कर्ममार्ग को चुना था। ♦